International Conference – 2025: Developed India @ 2047

Charting Multidisciplinary and Multi-Institutional Pathways for Inclusive Growth and Global Leadership held on 4th & 5th April, 2025

Organised by: IQAC - Gossner College, Ranchi

छोटानागपुर के पारम्परिक कलाओं के संरक्षण में डिजिटलाइजेशन का महत्व

बिनिता उराँव

शोधर्थी छात्रा, दर्शनशास्त्र विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची.

ई. मेल: इपदलइीनउल71व/हउंपसण्बवउ

किसी स्थान की कला और संस्कृति को जानने या समझने के लिए वहाँ की लोककला एक सरल, सहज और सशक्त माध्यम है। लोककला और जनजातीय कला किसी भी समाज की सांस्कृतिक धरोहर होती है, जो उसकी परम्पराओं, इतिहास, पहचान, विश्वास और पर्यावरण को प्रतिबिंबित करती हैं। हर क्षेत्र की अपनी विशिष्ट लोककला होती है जो उस क्षेत्र की सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक मान्याताओं का प्रतीक है। ये कलाएँ न केवल मनोरंजन और सौंदर्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि ये इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि यह हमारे सांस्कृतिक धरोहर को आज भी जीवंत रखी हुई है जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होती चली आ रही है। भारत विविधताओं का देश है इसके विभिन्न क्षेत्रों में विविध संस्कृतियाँ फल-फूल रही हैं। यही विविधता झारखण्ड के संस्कृतियों में भी दिखाई देती है। झारखण्ड की पारम्परिक कलाएँ यहाँ की समृध्द संास्कृतिक धरोहर का प्रतीक है। यह राज्य अपनी विविध जनजातीय कला, हस्तशिल्प, लोक चित्रकला, नृत्य, संगीत और स्थापत्य कला के लिए प्रसिध्द है। हालाँकि आधुनिक युग में पारम्परिक कलाएँ वैश्वीकरण, शहरीकरण और बदलते सामाजिक-आर्थिक परिवेश के कारण चुनौतियों का सामना कर रही हैं। ग्रामीण क्षेत्रों की कई पारम्परिक कलाएँ विषम परिस्थितियों और सुविधाओं के अभाव में विलुप्त होने के कगार पर पहुँच चुकी हैं जिसके कारण इन्हें सुरक्षित रखने के लिए आधुनिक तकनीकों का सहारा लिया जा रहा है। डिजिटलाइजेशन इस दिशा में एक प्रमुख प्रयास है जिससे इन कलाओं को न केवल संरक्षित किया जा सकता है, बल्कि व्यापक स्तर पर इसे प्रचारित और प्रसारित भी किया जा

International Conference – 2025: Developed India @ 2047
Charting Multidisciplinary and Multi-Institutional Pathways for Inclusive Growth and Global Leadership held on 4th & 5th April, 2025
Organised by: IQAC - Gossner College, Ranchi

सकता है। इस शोध पत्र में लोक व जनजातीय कला के अर्थ, छोटानागपुर की प्रमुख पारम्परिक कलाआंे एवं उनकी विशेषताओं, उनके महत्व, आधुनिक परिप्रेक्ष्य में उनकी स्थिति और उनके संरक्षण हेतु किए जा रहे प्रयासों को बतलाया गया है।

लोककला और जनजातीय कला: लोककला उस कला को कहा जाता है जो स्थानीय परम्पराओं मान्यताओं और संस्कारो से प्रेरित होती है। इसमें चित्रकला, मूर्तिकला, नृृत्य, संगीत, हस्तशिल्प, वस्त्र डिजाईन आदि शामिल होते हैं। लोककला दो शब्दों के मले से बना है लोक और कला। 'लोक' को अंग्रेजी में फॉक (थ्सवा) कहा जाता है, जिसका अर्थ है आदिम, असंस्कृत, जन और ग्राम। भारतीय संस्कृति में लोक की बहुत पुरानी परम्परा रही है। डॉ. प्रफुल्ल कुमार सिंह के अनुसार लोक का सम्बन्ध मूलतः निषाद्, द्रविड़ तथा किरात मूलक तथा वेद का संबंध आर्यमूलक जातियों-उपजातियों से रहा है।1 परन्तु कुछ विद्वानों का मानना है कि सम्पूर्ण जगत ही लोक है। जैसे डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी का मानना है कि लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम नहीं वरन् नगरों तथा ग्रामों में फैली हुई समूची जनता है जिसके व्यवहारिक ज्ञान का आधार पोथियां नहीं है।2 कला शब्द 'कल' धातु से बना है जिसका अर्थ है उत्पन्न करना, प्रेरित करना या प्रसन्न करना। सामान्यतः कला को मानव के सरल मन की अभिव्यक्ति माना जाता है। इस प्रकार दोनों पक्षों (लोक एवं कला) के मेल से लोककला शब्द की उत्पति मानी जाती है, जिसका अर्थ है सामान्य लोगों के द्वारा निर्मित, ग्रामीणों में प्रचलित तथा उनके बाह्य व आंतरिक भावों की अभिव्यक्ति। शैलेन्द्र नाथ सामंत के अनुसार लोककला जनसामान्य विशेषकर ग्रामीणजनों की सामुहिक अनुभूति की अभिव्यक्ति है। प्रेमचन्द गोस्वामी अपनी पुस्तक भारतीय कला के विविध स्वरूप में लिखते हैं- लोककला एक ऐसी अनपढ़ कलाकृति है जिसमें चित्रकार रंगो एवं रेखोओं का अनुपात और ध्यान नहीं रखता और न ही अंकन में किसी पारंपरिक बंधन का।3 अतः लोककला अनपढ़ और ग्रामीणों के जीवन वह सरल और सहज अभिव्यक्ति है जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होती चली आ रही है तथा

International Conference – 2025: Developed India @ 2047
Charting Multidisciplinary and Multi-Institutional Pathways for Inclusive Growth and Global Leadership held on 4th & 5th April, 2025
Organised by: IQAC - Gossner College, Ranchi

जिनका कोई व्यवस्थित ढंग से लिखित या लिपिवद्ध प्रमाण नहीं था। परन्तु ये अपनी समृद्ध रीति-रिवाजों, परम्पराओं, त्योहारों और मौखिक परम्पराओं का संरक्षण करते थे, जो हर नई पीढ़ी को विरासत के रूप में मिलती गयी। लोक कला एक बहुत व्यापक शब्द है जिसमें अनेकों प्रकार की लोक कला अन्तर्निहित है।4 ऐसे ही एक लोक कला है 'जनजातीय कला'।

जनजातीय कला विभिन्न जनजातियों द्वारा विकसित एक मौखिक कला रूप है। जो उनकी धार्मिक आस्थाओं, सामाजिक व्यवस्थाओं, रीति-रिवाजों और जीवनशैली को दर्शाती है। समय की इस लम्बी धारा में कई महत्वपूर्ण राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक बदलाव हुए। परन्तु सामाजिक बदलाव प्रत्येक क्षेत्र में अलग-अलग स्तर पर हुआ। शहरों से दूर विकास के अभाव में जंगलों, पहाड़ों, रेगिस्तानों और दुर्गम इलाकों में रहने वाले लोगों के समूह को जनजाति कहा गया तथा इनकी संस्कृति को जनजातीय संस्कृति कहा गया। इतिहासकारों की माने तो इनके बारे में बहुत कम जानकारी है। कुछ अपवादों को छोड़ दें, तो ये स्वयं अपनी लिखित दस्तावेज नहीं रखते थे। लेकिन जनजातीय समूहों ने अपने परम्पराओं, धार्मिक आस्थाओं, मान्यताओं, रीति-रिवाजो और जीवनशैली को आज तक जीवंत और समृद्ध रखा। इनकी समृद्ध संस्कृति की झलक इनकी कलाओं में स्पष्ट दिखाई देती है। जनजातीय कलाओं में अधिकतर चित्रकारी, लकड़ी अथवा धातु का कार्य, मिट्टी के बर्तन, कपड़े बुनना, बाँस से बनी सामग्री और नक्कासी आदि दृश्य कलाएँ आती हैं। नृत्य और संगीत इनके संस्कृति का अभिन्न व महत्वपूर्ण अंग है। ये कलाएँ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में यथावत रूप से स्थानान्तरित होती रहती है।

भारत में लगभग 705 जनजातीय समूह रहती है।5 जिनमें से 32 जनजातियाँ झारखण्ड में पायी जाती हैं। जो यहाँ की सांस्कृतिक विविधता का महत्वपूर्ण अंग है। यही विविधता छोटानागपुर की कलाओं में भी प्रदर्षित होती है। छोटानागपुर अपनी लोक चित्रकला, नृत्य, हस्तशिल्प, संगीत और स्थापत्य कला के लिए प्रसिध्द है। यहाँ की पारम्परिक कलाएँ मुख्य

International Conference – 2025: Developed India @ 2047
Charting Multidisciplinary and Multi-Institutional Pathways for Inclusive Growth and Global Leadership held on 4th & 5th April, 2025
Organised by: IQAC - Gossner College, Ranchi

रूप से आदिवासी संस्कृति उनकी धार्मिक आस्थाओं, लोककथाओं और प्रकृति से प्रेरित होती हैं। ये कलाएँ न केवल सांस्कृतिक पहचान को संजोए रखती है बल्कि स्थानीय सामुदायों की आजीविका का भी महत्वपूर्ण स्त्रोत है। आदिवासी कला की परंपरा अत्यन्त प्राचीन है और यह मुख्यतः तीन गुणों से पहचानी जाती है- जीवंतता, प्रमाणिकता और अनामिता।6 आदिवासी कलाओं में पशु-पक्षी तथा मनुष्य जीवन के विविध पक्षों का जो चित्रण हुआ है और अब भी हो रहा है, वह मनुष्य और प्रकृति के रिश्ते के बारे में बहुत कुछ कहता है। आदिवासी समुदाय आज पिछड़ा हुआ समझा जाता है, लेकिन उनकी सृजनात्मक चित्रकला तथा विभिन्न कला विधाओं से लगता है कि गरीबी और अन्य समस्याएँ कला की गति को नहीं रोक सकती।7 ये कला अपनी सहजता और नैसर्गिता के लिए जानी जाती हैं।

छोटानागपुर की प्रमुख पारंपरिक कलाएँ एवं उनकी विशेषता

s सोहराय कला

सोहराय चित्रों में भगवान् शिव तथा इनसे संबंधित विषयों की प्रमुखता रहती है। इस चित्रशैली में सर्प, हिरण, फूल-पतियाँ, पेड़-पौधे, पशु-पक्षियों को तथा मानव आकृतियों को सुन्दर ज्यामितीय स्वरूप में चित्रित किया जाता है। इसके अलावा पुष्प विषयक एवं अलंकृत मोटिव, मछली, रसोई के उपकरणा आदि को बहुत खूबसूरती के साथ चित्रित करते हैं। आकृतियाँ मिट्टी रंग से दतवन या कपड़े लिपटे ब्रश से सशक्त एवं मोटी रेखा द्वारा उकेरी जाती हैं। इन चित्रों में मुख्य तौर पर सफेद, काला, पीला, लाल तथा हल्के नीले रंग का इस्तेमाल किया जाता हैै। लगभग सभी रंग मृदा रंग के होते हैं। ये सारे चित्र इनके प्राचीनतम अभिव्यक्ति प्रकटीकरण की आवृŸिा है।8

यह कला सोहराय पर्व से जुड़ी हुई है जो आदिवासी बहुल क्षेत्रों में दिवाली के दूसरे दिन (कार्तिक अमावस्या) मनाया जाता है। किसान के सबसे बड़े सहयोगी पशु गाय, बैल, काड़ा, भैस

International Conference – 2025: Developed India @ 2047
Charting Multidisciplinary and Multi-Institutional Pathways for Inclusive Growth and Global Leadership held on 4th & 5th April, 2025
Organised by: IQAC - Gossner College, Ranchi

तथा बकरी आदि हैं। इन्हीं पशुओं को साल में एक बार देवतओं की तरह पूजा जाता है एवं सम्मान दिया जाता है। उसका साज श्रृंगार किया जाता है इसी उत्सव का नाम झारखण्ड में सोहराइ (सोहराय) है।9

s कोहवर कला

भिŸिा चित्र तकनीक का एक रूप 'ग्राफिटो' है, जिसे दीवार पर कंधी से खुरच कर बनाया जाता है। इस चित्र शैली का प्रयोग 'कोहवर चित्रकला' में किया जाता है।10 कोहबर कला में बाँस, सूर्य, स्वास्तिक, कमल फूल, हाथी, पालकी, मछली आदि शुभ प्रतीक चित्रों को बनाते हैं। कोहबर चित्रों में मुख्यतः चार रंग ही दिखाई देते हैं। चित्रों में अभिकल्पों का निरूपण कंघी के माध्यम से किया जाता है। सबसे पहले दीवार में काले रंग का लेप चढ़ाया जाता है। सूखने के बाद सफेद या पीेले रंग का लेप चढ़ाया जाता है। लेप के गीला रहते ही कंधी के दाँतों के माध्यम से विविध ज्यामितिक डिजाइन, फूल आदि छोड़ दिया जाता है। कंधी से काटने के बाद काला रंग बखूबी से उभरता है। रंग भरने के लिए दातुन की कूची या फिर पुराने कपड़े को लकड़ी में लपेटकर बनाए गए ब्रश का प्रयोग किया जाता है।11 कोबर चित्रकाल घरों के बहरी और भीतरी दीवारों पर बनाए जाते हैं।

कोहबर का अर्थ है नवविवाहित दम्पतियों का घर। यह चित्रकला नवविवाहितों को संसारिक जीवन के रहस्यों को संकेतिक रूप से समझने के लिए किया जाता है तथा उनके भावी सन्तानोत्पति का प्रतीक माना जाता है।

s गोदना कला (टैटू)

झारखण्ड में बसने वाली विभिन्न जनजातियों - उराँव, संताल, मुंडा, हो, असुर आदि में गोदना गुदवाने की प्रथा आदि काल से प्रचलन में है। जनजातीय समाज में यह सामाजिक मान्यता और धार्मिक लोक विश्वास से जुड़ कर नारी जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग और

International Conference – 2025: Developed India @ 2047
Charting Multidisciplinary and Multi-Institutional Pathways for Inclusive Growth and Global Leadership held on 4th & 5th April, 2025
Organised by: IQAC - Gossner College, Ranchi

अलंकरण बन गया है। जनजातीय समुदाय में विवाह पूर्व किशोरी कन्याओं को गोदना गुदवाने की प्रथा अनिवार्य रूप से प्रचलित रही है। यहाँ जनजातीय समुदाय की किशोरी बालिकाएँ अपने ललाट, कनपटी, छाती, हाथ, पैर आदि अंगो पर विभिन्न प्रकार की आकृति के चित्रात्मक गोदना गुदवाती हैं। इनका विश्वास है कि मृत्यु के बाद भी गोदना साथ में रह जाता है।12

s धातु शिल्प (डोकरा कला)

डोकरा कला एक अनूठी धातु शिल्प कला है, जिसमें मोम ढलाई (लॉस्ट वैक्स कास्टिंग) तकनीक का उपयोग किया जाता है। यह कला झाारखण्ड, छतीसगढ़, ओडिशा, पश्चिम बंगाल और तेलंगाना राज्यों में भी प्रसिद्ध है। परन्तु इसकी कारीगरी विभिन्न राज्यों में अलग-अलग है। धातुशिल्प का काम झारखण्ड में अतिप्राचीन कला से होता आ रहा है। इस कार्य से असुर, लोहार, मलार जुड़े हुए हैं। मलार तांबा, कांसा, अल्मुनियम, जस्ता पीतल आदि धातुओं के पारम्परिक कलाकृतियों के कारीगर हैं। ये आभूषण, घरेलू उपकरण मूतियाँ आदि बनाकर लोगों की जरूरतों को पूरा करते हैं। सम्प्रति धातु शिल्प को डोकराशिल्प भी कहा जाता है। इसमें पुराने धातु को पिघलाकर तरह-तरह के सामान बनाये जाते हैं।13 पइला, डिबरी, घुघरू, सिन्दूर कीया, लोटा, थली, कटोरा, घंाटी, खुरपी, बटखारा, पउआ, तथा टंगा आदि छोटानागपुर के धातु कला के कुछ उदाहरण हैं।

s बाँस कला

बाँस ग्रामीणों के जीवन का महत्वपूर्ण अंग है। बाँस का उपयोग विवह कार्य, त्योहार, सजावट, कृषि, दैनिक कार्यों से लेकर जन्म-मरण संस्कारों तक किया जाता है। झारखण्ड में तुरी जनजाति मुख्य रूप से इस कला में निपूर्ण है। तुरी के अलावे झारखण्ड में बाँस शिल्प का काम महली, ओंड, डोमरा, गोड़ाइत, बिरजिया आदि जाति के लोग भी करते हैं। साथ ही छोटानागपुर में बाँस करील (कोमल तना) का भोजन के सालन या सब्जी के रूप में उपयोग

International Conference – 2025: Developed India @ 2047
Charting Multidisciplinary and Multi-Institutional Pathways for Inclusive Growth and Global Leadership held on 4th & 5th April, 2025
Organised by: IQAC - Gossner College, Ranchi

किया जाता है। यहाँ का यह लोकप्रिय एवं स्वादिष्ट व्यंजन है। बाँस करील से हेंडुआ, संधना आचार, सब्जी में भूजिया, दाल, चनादाल मिला टिक्का आदि बनाया जाता है। इसका स्वाद खट्टा होता है एवं यह कोमल होता है।14 सूप, दउरा, झाड़ू, खँाचा, सूपली, बेनवा, कुमनी, नचुआ, ककई, हरका, पेटी, छटका, चंगरी आदि बाँस कला के कुछ उदाहरण हैं।

s मिट्टी कला (टेराकोटा)

टेराकोटा शब्द का अर्थ है 'पकी हुई मिट्टी'। यह एक प्राचीन कला है, जिसमें मिट्टी को आकार देकर उसे भट्टी में पकाया जाता है ताकि वह ठोस और टिकाऊ बन सके। छोटानागपुर में इस कला का बहुत महत्व है। यह कला आदिवासी समुदायों की परम्पराओं, धार्मिक मान्यताओं और लोक संस्कृति से गहराई से जुड़ी हुई है। आज भी लगभग सभी समाज शुद्धदता के लिए मिट्टी के बर्तनों का ही प्रयोग करते है। किसी भी प्रकार धार्मिक कार्यो के लिए मिट्टी की बनी वस्तुओं का प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त त्योहारों, जैसे दीपावली में दिया जलाने के लिए गाँव में गृह निर्माण के लिए, घर के छपरों को छारने के लिए खपड़े के रूप में, दैनिक कार्य के वस्तुओं के रूप में जैसे - घड़ा, सुराही, तावा, ढक्कना, चेरी, कोहिया, धूपदानी, गमला, चिलम तथा चूल्हा-चुका आदि, और बच्चों के खिलौनों के रूप में घोड़ा, हाथी, हिरण, खरगोश, शेर, बाघ, भालू आदि के लिए भी मिट्टी का प्रयोग किया जाता रहा है। छोटानागपुर के कुम्हार जनजातियों ने आज भी इस कला को जीवंत रखा है।

s हस्तशिल्प कला

आधुनिकता ने छोटानागपुर के जिस कला को सबसे अधिक नुकसान पहुँचाया है, वह है यहाँ की पारम्परिक हस्तशिल्प कला। कुछ हस्तशिल्प कला आज भी जीवंत हैं परन्तु कुछ कलाएँ विलुप्त होने के कगार पर खड़ी हैं। छोटानागपुर में चीक बड़ाईक बुनकर जाति है जो स्त्री-पुरूष और बच्चों आदि के लिए कपड़े बनाते है। ये कपड़ों का निर्माण घरों में लकड़ी के बने करघों से

International Conference – 2025: Developed India @ 2047
Charting Multidisciplinary and Multi-Institutional Pathways for Inclusive Growth and Global Leadership held on 4th & 5th April, 2025
Organised by: IQAC - Gossner College, Ranchi

करते है। यह इनकी पारम्परिक कला शैली है जिसे आज भी बुनकर समाज करता आ रहा है। परन्तु 'मोरा' जिसे पुआल को चोटी की तरह गूंथ कर एक विशाल कोहडे की आकृति में बनाया जाता है। इसमें अनाज सुरक्षित रहता है। 'छटका' जिसमें अनाज या धान को सुरक्षित रखा जाता था तथा 'तुम्बा' जो विशेष प्रकार के कद्दू के पके खोल को साफ कर बनाया जाता था, जिसमें आप पानी भर के साथ ले जा सकते है, अब विलुप्त होने वाला है। छोटानागपुर की महिलाएँ गुदरी, पटिया, बढ़नी, नेठो आदि पारम्परिक कलाओं में निपुण है। 'गुदरी' पुराने फटे कपड़ों को मिला कर सिल दिया जाता है जिससे एक नई दरी बन जाती है। 'पटिया' यह खिजूर घास से बनी चटाई है। 'बढ़नी' बढ़नी घास को गूंथ कर बनाई गयी झाड़ू है जो घर साफ करने के काम आती है।

- वाद्ययंत्र शिल्प

झारखण्ड के वाद्ययंत्रों में अवनद्ध या चमड़ा निर्मित वाद्यों की संख्या सबसे ज्यादा है। मंदर, ढोल, ढंाक, धमसा, नगाड़ा, तासा, जुड़ी नागाड़ा आदि वाद्ययंत्र इस श्रेणी में आते हैं। आदिवासी सामाज के बीच कई वाद्ययंत्र अब लुप्त होते जा रहे हैं। इसी में से एक वाद्ययंत्र है - भुआंग। यह आदिवासी समाज में त्योहरों पर विशेष रूप से बजाया जाने वाला महत्वपूर्ण वाद्ययंत्र है।15 प्राचीन काल से ही झारखण्ड में विभिन्न वाद्ययंत्रों का चलन रहा है। रसमय जीवन हमेशा से यहाँ के आदिवासियों की विशेषता रही है।

- लोक नृत्य और संगीत

सभ्यता के प्रारंभ से ही मनुष्य कला प्रेमी रहा है। जहाँ उसने भौतिक कलाओं से अपने जीवन को सरल और सुन्दर बनाने का प्रयास किया, वहीं अभौतिक कलाओं (ललित कला) से अपने मन को आनन्द, सुख और शान्ति से भरने का प्रयास किया। ऐसा कहा जाता है कि झारखण्ड में चलना नृत्य और बोलना गीत है। इस धरती के कण-कण में प्रकृति का वह अनूठा संगीत

International Conference – 2025: Developed India @ 2047
Charting Multidisciplinary and Multi-Institutional Pathways for Inclusive Growth and Global Leadership held on 4th & 5th April, 2025
Organised by: IQAC - Gossner College, Ranchi

समाया हुआ है, जो सीधे आत्मा का स्पर्श करता है। झारखण्ड के जनजीवन में संगीत-नृत्य का अत्यंत महत्व है। ये संगीत-नृत्य झारखण्ड के लोगों की जीवन पद्धति और जातीय संस्कृति के सम्यक् दर्पण हैं, प्रकृति के सहज उद्गार हैं। जीवन में घटीत होनेवाले सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, संयोग, आशा-निराशा, हास्य-विनोद के आकर्षक शब्द-चित्र इनके लोकगीतों में साफ-साफ प्रतिबिंबित होता है।16 छोटानागपुर में विभिन्न उत्सव से संबंधि नृत्य और संगीत देखने को मिलते हैं। यहाँ के पारम्परिक नृत्यों में छऊ नृत्य, पाइका नृत्य, करमा नृत्य, झुमर नृत्य, डोमकच नृत्य तथा जदूर नृत्य आदि प्रसिद्ध हैं। सोहराय गीत, सरहुल गीत, करमा गीत तथा जन्म व विवाह और विभिन्न ऋतुओं में गाये जाने वाले गीत यहाँ की पारम्परिक लोककलाओं को समृद्ध बनाती हैं। उदाहरण स्वरूप करमा में गाया जाने वाला यह पारम्परिक गीत-

कोन टोला नगेरा ढोलकी बाजे घ्
कोन टोला माँदर बाँसी बाजे रे घ्
कोन अंगना अंगनई झूमइर माड़े घ्
नायक टोला नगेरा ढोलकी बाजे
तुरी टोला माँदर बाँसी बाजे
किसान अंगने रे अंगनइ झूमइन माँड़े।

इसी तरह करम के अंगनइ झूमर से मांदर के धातिंग धूर धतिंग तांग से पूरा गाँव गूंजता रहता है।17

आधुनिक युग में पारंपरिक कलाओं की स्थिति

तकनीकी विकास और औद्योगिकीकरण के कारण पारंपरिक कलाओं पर कई प्रभाव पड़े हैं। वैश्वीकरण और बाजारीकरण के चलते कलात्मक वस्तुओं की माँग बढ़ी है परन्तु प्राकृतिक कलाओं की जगह प्लासटिक की बनी कलात्मक वस्तुओं ने ले ली है क्योंकि ये सस्ते और

International Conference – 2025: Developed India @ 2047
Charting Multidisciplinary and Multi-Institutional Pathways for Inclusive Growth and Global Leadership held on 4th & 5th April, 2025
Organised by: IQAC - Gossner College, Ranchi

टिकाऊ होते हैं। परन्तु ये वस्तुएँ प्रदूषण का कारण भी हैं। ये अप्रकृतिक होते हैं जिसके कारण इनका पुनरावृति करना कठिन हो जाता है। आज मानव को इस परिस्थिति का भली-भाँति ज्ञान है और इन्हीं कारण से वह सस्टेनेबल चीजों की ओर मुड़ रहा है। आज इन बढ़ती समस्याओं का समाधान खोजने के प्रयास ने हमारा ध्यान उन पारम्परिक कलाओं की ओर आकर्षिक किया जिन्हें हम भूलते जा रहे थे।

पारम्परिक कलाओं के डिजिटलाइजेशन का महत्व

आज के दौर में भले ही पारम्परिक कलाओं की लोक प्रियता बढ़ी है। परन्तु कई दसक पूर्व हमने इन्हें अनदेखा कर दिया था। परिणाम स्वरूप कारीगरों या कलाकारों में इन कलाओं के प्रति रूचि कम हो गई। यही वजह है कि कई कलाएँ विलुप्त होने के कगार पर हैं। विचार करें कि उपरोक्त कलाओं में हमें कितनी कलाओं का ज्ञान है। झारखण्ड की जनजातीय कलाओं का ज्ञान यहाँ की जनजातियों, गैर-जनजातियों तथा अन्य भारतीयों में स्वभाविक रूप से अलग-अलग स्तर होगा। परन्तु 21वीं सदी में जन्में झारखण्डी जनजातियों और गैर-जनजातियों की बात की जााए तो कुछ कलाओं का ज्ञान इन्हें अवश्य होगा, लेकिन कई ऐसी कलाएँ हैं जिनका इन्हें नाम भी पता नहीं होगा। कुछ अपवाद अवश्य हो सकते हैं क्योंकि विकास की दृष्टि से झारखण्ड काफी पीछे रहा है। अतः हमें अपने कलाओं को संरक्षित करने की आवश्यकता हैं ताकि इसका अस्तित्व बना रहे, जिससे हमारी आने वाली पीढ़ी को मानवीय सभ्यता के आरम्भ और विकास का ज्ञान हो सके तथा उनके जीवन में उŸारोतर वृध्दि होता रहे। डिजिटलाइजेशन के माध्यम इन कलाओं को बहुत लंबे समय तक संरक्षित रखा जा सकता है। अब विभिन्न संग्रहालय, शोध संस्थानों और सरकारी एजेंसियों द्वारा इन कलाओं के डिजिटल संग्रह तैयार किए जा रहे हैं। हमारी संस्कृति क्या है कैसी है उसका ब्यौरा तथा उससे संबंधित उच्च गुनवŸाा वाली वीडियो और तस्वीरों को एकत्र किया जा रहा है। जिससे कोई भी व्यक्ति कभी भी पढ़ व देख सकता है। आज ई-कॉमर्स (जैसे- ।उंरवदए थ्सपचांतजए

International Conference – 2025: Developed India @ 2047
Charting Multidisciplinary and Multi-Institutional Pathways for Inclusive Growth and Global Leadership held on 4th & 5th April, 2025
Organised by: IQAC - Gossner College, Ranchi

डलदजतलए ठपहइंेामज मजब) स्थानीय कारीगरों को डिजिटल माध्यम से अपना उत्पाद बेचने का अवसर देता है। यही नहीं यूट्यूब, फेसबुक तथा इंस्टाग्राम जैसी प्लेटफॉम पर तस्वीरें और वीडियो डालकर दूसरों को सिखा सकते हैं और दूसरों से सिख भी सकते हैं। ई-कॉम और सोशल मीडिया के माध्यम से इन पांरपरिक कलाओं को न केवल सुरक्षित रखा जा सकता है बल्कि उसका प्रचार और प्रसार भी किया जा सकता है।

इस प्रकार डिजिटलाइजेशन लोक और जनजातीय कलाओं के संरक्षण के लिए एक प्रभावी उपाय साबित हो सकता है। यह पारंपरिक कलाओं को संरक्षित करने के साथ-साथ उन्हें एक नया जीवन देने का कार्य करता है। हालाँकि, इस प्रक्रिया को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए सरकारी, गैर-सरकारी और निजी क्षेत्र की भागीदारी अवश्य है। उचित तकनीकी प्रशिक्षण, विŸााीय सहायता और जागरूकता अभियानों के माध्यम से इन कलाओं को डिजिटल दुनियाँ में सुरक्षित रखा जा सकता है।

संदर्भ सूची:

1. सिंह, डॉ. प्रफुल्ल कुमार ‘मौन’। *लोकदेवताओं की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि*। **ज्ञानतरंगिणी**, प्रधान संपादक डॉ. अनिल कुमार ‘आंजनेय’, वर्ष 1985-86, अंक-1, पृ. 21।
2. अग्रवाल, डॉ. गिरिराज किशोर। *कला समीक्षा: लोककला*। देवऋषि प्रकाशन, अलीगढ़, पृ. 188-189।
3. शास्त्री, गिरीश (संपादक) एवं रोहिताश कुमार (सह-संपादक) । *भारतीय लोककला के बदलते आयाम (चुनौतियाँ एवं सम्भावनाएँ)* । प्रथम संस्करण, 2021, पृ. 3।
4. वही, पृ. 22।
5. (यहाँ मूल स्रोत अस्पष्ट है — कृपया सही जानकारी दें, मैं इसे ठीक कर दूँगा)
6. करपरदार, मनोज कुमार। *झारखंड आदिवासी कला परंपरा*। प्रभात प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, 2023, पृ. 7।

International Conference – 2025: Developed India @ 2047

Charting Multidisciplinary and Multi-Institutional Pathways for Inclusive Growth and Global Leadership held on 4th & 5th April, 2025

Organised by: IQAC - Gossner College, Ranchi

7. वही, पृ. 8।
8. वही, पृ. 29।
9. गौंझू, गिरिधारी राम 'गिरिराज'। *ऋतु के रंग मांदर के संग*। संस्करण 2018, प्रिय साहित्य सदन, दिल्ली-110094, पृ. 137।
10. सिन्ह, डॉ. आदित्य प्रसाद। *तूलिका (झारखंड की जनजातीय चित्रकला)*। प्रथम संस्करण, 2014, विकल्प प्रकाशन, दिल्ली-110094, पृ. 50।
11. करपरदार, मनोज कुमार। *झारखंड आदिवासी कला परंपरा*। प्रभात प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, 2023, पृ. 33-34।
12. सिन्ह, डॉ. आदित्य प्रसाद। *तूलिका (झारखंड की जनजातीय चित्रकला)*। प्रथम संस्करण, 2014, विकल्प प्रकाशन, दिल्ली-110094, पृ. 117-118।
13. गौंझू, गिरिधारी राम 'गिरिराज' एवं शकुन्तला मिश्र। *झारखंड की पारंपरिक कलाएँ*, झारखंड झरोखा, रातू रोड, रांची-834001, पृ. 284।
14. वही, पृ. 177-178।
15. करपरदार, मनोज कुमार। *झारखंड की आदिवासी कला परंपरा*। प्रभात प्रकाशन प्रा. लि., प्रथम संस्करण (2023), नई दिल्ली-110002, पृ. 124।
16. वही, पृ. 122-125।
17. गौंझू, गिरिधारी राम 'गिरिराज'। *ऋतु के रंग मांदर के संग*। संस्करण 2018, प्रिय साहित्य सदन, दिल्ली-110094, पृ. 112।